पुस्तक समीक्षा

जमीन पर उतरे सपनेः सडबरी वैली स्कूल

रविकांत

शिक्षा साहित्य में स्कूलों के जीवन्त विवरण दुर्लभ हैं। हिन्दी क्षेत्र या हिन्दुस्तान में तो और भी दुर्लभ। ऐसी किताबें अंगुलियों पर गिनी जा सकती हैं जो स्कूल के रोजमर्रा के जीवन का चित्रण करती हों। निश्चित ही ऐसा साहित्य शिक्षाकर्मियों में उम्मीद जगाता है कि शिक्षा सिद्धान्त कोरे सिद्धान्त नहीं हैं। उन्हें जमीन पर उतारने के प्रयास किए जा सकते हैं और उनके फल मीठे हो सकते हैं। विश्व साहित्य से ऐसी पुस्तकों को चुनकर हिन्दी में लाने के लिए एकलव्य, भोपाल का साधुवाद।

''सपने सच हो सकें, इससे पहले इंसान को सपने देखने पड़ते हैं!''
- फिल्म, ''एन एम्प्रेसेज एंड द वारियर्स, 2008''

सपने बड़ी अजीब चीज होते हैं, पहले तो उन्हें खुली आंखों देखना पड़ता है और फिर उन्हें जमीन पर उतारने के लिए हाड़ तोड़ मेहनत करनी पड़ती है और यह सिर्फ शारीरिक मेहनत का ही मामला नहीं होता, वह तो फिर भी आसान होती है। इससे कहीं मुश्किल होता है अपने दिमागों में जड़ जमाए बैठे विचारों की हड्डी-हड्डी तोड़कर उसका चूरा बनाकर नई हड्डियों को गढ़ना और यह काम भी विचारों के जरिए ही करना होता है। अक्सर विचार बहनापा या भाईचारा निभाते हुए या तो दूसरे विचारों को खंड-खंड करने से इंकार कर देते हैं या उसमें दिखावे के लिए थोड़ा बहुत हेर-फेर करके सामने रख देते हैं या फिर अगर तोड़ भी दिया तो जल्द से जल्द फिर से उसे पहले जैसा ही बना देते हैं। फिर कई बार नए विचार व कल्पनाएं बन भी जाएं तो उन्हें धरातल पर उतार पाने को लेकर, बनाने वालों को ही कई बार पूरा यकीन नहीं होता और कई बार उन्हें पूरा कर पाने का बूता किसी अकेले में नहीं होता।

तो सपनों को दूसरों के साथ साझा करने, उन्हें भी उस सपने में भागीदार बनाने की कोशिश करनी पड़ती है; एक बार फिर से जो मुश्किल खुद सपने देखने में आती है वैसी ही या उससे कहीं ज्यादा मुश्किलें खुद के देखे सपने को दूसरों के दिलो-दिमाग में रोपने में आती है। तो कई बार इसका एक तरीका यह निकाला जाता है कि क्यों न सपने अकेले-अकेले देखने के बजाय साथ मिलकर देखे जाएं। अब इससे भी सपने देखने व उन्हें जमीन पर उतारने की मुश्किलें कम तो नहीं होतीं लेकिन उनसे जूझने वाले दिमाग और हाथ ज्यादा हो जाते हैं।

हम में से कई व्यक्ति यह चाहते और कहते रहे हैं कि बच्चों को उनकी इच्छाओं के मुताबिक पढ़ाया जाए, जो वे चाहते हैं, वे वही करते हुए सीखें। उन पर दूसरों की इच्छाएं आकांक्षाएं लादी न जाएं। वे अपनी गति व रुचि को खोजें व उसी के अनुसार सीखें सीखने में किसी तरह का डर/आतंक या दबाव न हो चाहे वह कुर्सी का हो या उम्र का या यहां तक कि ज्ञान का भी। उनके साथ बराबरी का व्यवहार किया जाए, लोकतांत्रिक तौर-तरीके अपनाए जाएं, आदि-आदि। लेकिन जैसे ही इन विचारों को जमीन पर उतारने की बात आती है तो तमाम तरह के अगर मगर किन्तु उठने लगते हैं और हममें से ज्यादातर ऊपर से बच्चों के भले के नाम पर हकीकत में खुद के स्वार्थों या महत्त्वाकांक्षाओं की वजह से उन विचारों पर तरह-तरह की पाबंदियां या बंदिशें लगा देते हैं और नतीजे में कहे जा रहे विचार व जमीन पर उनकी हकीकत में मीलों का फासला दिखाई पड़ता है।

लेखक परिचय

तकरीबन 20 वर्षों से प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक शिक्षा, शिक्षण सामग्री, पाठ्यपुस्तक निर्माण, शिक्षाक्रम और अनुवाद के क्षेत्र में कार्य। हाल-फिलहाल विभिन्न संस्थाओं के साथ बतौर शैक्षिक सलाहकार कार्यरत हैं।

जिस वक्त आबादी के लिहाज से दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में जब एक भी ऐसा स्कूल मौजूद न हो जो लोकतंत्र के बुनियादी सरोकारों की बुनियाद पर खड़ा किया गया हो, उस वक्त आप सडबरी वैली स्कूल की कथा को एक सपने की कथा की तरह पढ़ सकते हैं। इसके किस्सों को सपने में घटी घटनाओं की तरह ले सकते हैं। आखिर यह सपना नहीं तो क्या है कि एक बारह साला बच्चा पेड़ की चोटी पर चढ़कर सत्तर फीट की ऊंचाई से गर्व से पुकारे और नीचे उसके शिक्षक के बजाय सभी कार्मिकों को स्टाफ के तौर पर पहचाने जाने वाले व्यक्ति अपने विचार पर टिके रहने की जिद में, कि हरेक बच्चा जब चाहे जहां चाहे जा सकता है, दिल हाथ में थाम कर खड़े रहें।

और यह भी सपना नहीं तो क्या है कि एक बच्चा कुछ सालों तक पूरे दिन, हर दिन, पतझड़, सर्दियां, बसंत केवल मछली ही पकड़ता रहे और हर साल उसके पिता को स्टाफ समझाता रहे कि मछली पकड़ने के साथ वह क्या-क्या चीजें सीख रहा हो सकता है। कोई अपनी इच्छा से रोज चार घंटे तुरही बजाता रहे तो कोई अपनी मर्जी से रोज चार घंटे ढोल बजाता रहे और बच्चे तो बच्चे, बड़े भी उसकी ढोली या गवैया कह कर खिल्ली न उड़ाएं।

और यह तो शायद सपने में भी सपना ही हो सकता है कि कहां तो हमारे देश के लाखों सरकारी स्कूलों में ऊंची-ऊंची तनख्वाहें पाने वाले शिक्षा अधिकारियों से लेकर अध्यापक की जोर आजमाइश के बावजूद गणित और दूसरे विषयों में पांचवीं के बच्चों को दूसरी कक्षा के स्तर तक की चीजें नहीं आ पातीं और कहा एक स्कूल में बच्चों का एक समूह एक दिन तय करता है कि हम अंकगणित सीखेंगे और अगले बीस सप्ताह में हर सप्ताह आधा-आधा घंटा शिक्षक के साथ लगाकर व बाकी काम खुद करके कक्षा 6 तक की अंकगणित सीख लें।

जिस देश में पिछले बीस-पच्चीस सालों से शिक्षक केन्द्रित शिक्षा को परे धकेलने की नाकाम-सी कोशिश करते हुए बाल केन्द्रित शिक्षा का ढोल इस तरह पीटा जा रहा हो कि उससे गगन तो गुंजायमान होता रहे लेकिन जमीन पर पत्ता भी न खड़के, उसमें सीखने और सिखाने की नीचे दी गई बुनियाद भी एक सपने से कम नहीं है।

> *हम यह चाहते थे कि लोग केवल वह सीख सकें जिसे सीखने को वे आतुर हों - जिसे सीखने की पहल वे स्वयं करें, जिसे सीखने पर वे आमादा हों और जिसके लिए वे मेहनत करने को तैयार हों। हम चाहते थे कि वे अपनी सामग्रियों और पुस्तकों और शिक्षकों को चुनने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र हों। हमने महसूस किया कि जीवन में वही सीखना महत्त्व रखता है जिसके लिए सीखने वाला स्वयं को किसी विषय में झोंक देता है, बिना किसी के उकसाए, बिना घूस या दवाब के और हम आश्वस्त थे कि आतुर, संकल्पित व आग्रही विद्यार्थियों के साथ काम करने वाले शिक्षक असामान्य संतुष्टि अनुभव करेंगे।(पृ. 9)*

हमारे यहां खास तौर पर हिंदी भाषा और इसके करीब की भाषाओं में इस तरह की उम्मीद तो बड़ों से भी नहीं रखी जाती। 'अपनी पढ़ाई-लिखाई व प्रमाणपत्रों' के बूते नौकरी हासिल कर चुकने वाले सर्वज्ञाताओं के लिए कुछ सीखना या पढ़ना अपराध या मजाक से कम नहीं समझा जाता, वहां बच्चों से इस तरह की उम्मीद रखना निरी खामाख्याली ही मानी जा सकती है।

सीखने को लेकर यह स्कूल भी आयु मिश्रण के औजार का इस्तेमाल करता है जिसे हमारे यहां डेविड ऑसब्रो नीलबाग में और उनके छात्र अलग-अलग जगहों पर आजमा चुके हैं। औद्योगिक समाज के साए तले विकसित हुए विशालकाय शिक्षा तंत्रों के लिए यह बात समझना लगभग नामुमकिन-सा है कि स्कूल कारखाने नहीं हैं, बच्चे मजदूर नहीं हैं और अध्यापक सुपरवाइजर नहीं हैं और सीखना सबसे बेहतर अपने से ज्यादा जानने व किसी काम को महारत के साथ कर सकने वालों के साथ जी कर होता है। सो वे एक कक्षा में एक ही उम्र के बच्चों को एक साथ सिखाने के पीछे लट्ठ लेकर पड़े रहते हैं और ज्यादातर बच्चे न सीखने को लेकर अड़े रहते हैं। आयु मिश्रण में सीखने के पहलू को इसमें कुछ इस तरह बयां किया गया है।

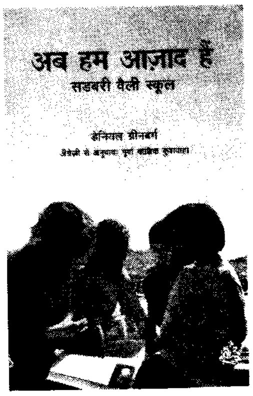

अब हम आज़ाद हैं
सडबरी वैली स्कूल
लेखक : डेनियल ग्रीनबर्ग
अंग्रेजी से अनुवाद : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
प्रकाशक : एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर, भोपाल-462016 मध्यप्रदेश
पृष्ठ : 186 (कवर सहित)
मूल्य : 100 रुपये

बच्चों को एक-दूसरे से सीखना अच्छा लगता है। पहले तो, अक्सर यह अधिक आसान होता है; बाल शिक्षक वयस्कों की तुलना में विद्यार्थियों की कठिनाइयों के अधिक नजदीक होता है, क्योंकि वह कुछ वक्त पहले इनसे गुजरा होता है। उसके स्पष्टीकरण अमूमन अधिक सरल और बेहतर होते हैं, दबाव और गुण दोष विवेचन कम होता है और जल्द से जल्द सीखकर अपने पथप्रदर्शक के स्तर तक पहुंचने का जबरदस्त प्रोत्साहन भी रहता है... वे जो पढ़ा रहे होते हैं, उसके बारे में उनकी अपनी समझ भी बढ़ती है। पहले उन्हें बात को ठीक से छांट कर उसे समझना पड़ता है। अतः वे उस सामग्री से तब तक जूझते हैं जब तक कि वह उनके दिमाग में बिल्कुल स्पष्ट न हो जाए और जब तक वह उनके शिष्यों के लिए भी पूरी तरह से स्पष्ट न हो जाए। (पृ. 76)

इस सपने को देखने वालों ने यह भी माना कि जिम्मेदारी का मतलब अपनी गठरी खुद उठाना है। व्यक्ति को खुद ही निर्णय करने होंगे और उनके नतीजे भी खुद ही भुगतने होंगे। व्यक्तिगत दायित्व का मतलब सभी लोगों में बुनियादी समानता को स्वीकारना होता है और ऐसे में जो भी सत्ता अस्तित्व में हो वह सभी पक्षों की स्वतंत्र सहमति से होनी चाहिए। इस सपने को देखने वालों को हरेक व्यक्ति की संपूर्ण व्यक्तिगत जिम्मेदारी व जवाबदेही से कम में संतुष्टि नहीं मिलने वाली थी, फिर चाहे उसकी उम्र, ज्ञान या उपलब्धि चाहे कुछ भी क्यों न हो।

अब यह बात कहने में जितनी आसान लगती है उतनी है नहीं। अगर आप अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार हैं तो अपनी गलतियां व नाकामियों के लिए भी और उन्हें सुधारने की जिम्मेदारी भी आपकी ही है। आप अधिकारियों या ईश्वर या समाज को उसके लिए दोषी नहीं ठहरा सकते। अब जिस देश में हर बच्चे को अच्छी शिक्षा देने की जिम्मेदारी व जवाबदेही की गठरी उठाने का जिम्मा लेने से सरकार व समाज तक ने इंकार करके शिक्षा का अधिकार कानून बनाकर उसे जनता के सिर पर लाद दिया हो, वहां बच्चों व अध्यापकों से एक साथ इस बात की उम्मीद करना भी एक सपना ही है।

इस स्कूल को चलाने वालों ने माना कि अहम सवाल यह है कि लोग अपनी सत्ता किस तरह से हासिल करते हैं और हासिल हो जाने के बाद उसे कैसे नियंत्रित किया जाता है। उनका मानना यह भी था कि इंसानों को ऐसी निरंकुश सत्ता से डर लगता है जो उनको भागीदारी से वंचित रखती है और जिन पर उनका खुद का कोई काबू नहीं होता। सो उन्होंने अपने कामों को संचालित करने के इंसानों के पास अब तक उपलब्ध सबसे बढ़िया तरीके को चुना यानी लोकतांत्रिक तरीका और अपने स्कूल को लोकतांत्रिक तरीके से संचालित करना तय किया। उन्होंने खुद से पूछा कि अगर पूरा समाज लोकतांत्रिक नियम-कायदों से चल सकता है तो स्कूल क्यों नहीं। उन्होंने यह भी माना कि स्कूल के बच्चे उन सिद्धांतों और कार्यप्रणालियों को सीखते हुए बढ़ सकते हैं जो लोकतांत्रिक जीवन शैली बनाती हैं। वे जब बालिग होंगे तो जिम्मेदार सामुदायिक नागरिकता उनके लिए स्वाभाविक बन चुकी होगी क्योंकि वे उसके साथ लंबा अरसा गुजार चुके होंगे।

इस जिम्मेदारी में भागीदारी का एक तरीका स्कूल की बैठक है, जो कि स्कूल को संचालित करती है। बैठक में आयु सीमा की किसी बंदिश के बगैर हरेक विद्यार्थी और स्टाफ का एक मत होता है। हरेक व्यक्ति मत दे सकता है अगर वह बैठक में मौजूद है। बैठक में हाजिर होना जरूरी नहीं है सो जब कोई मुद्दा किसी के दिल के करीब होता है तो वह बैठक में हाजिर होता है। चूंकि विद्यार्थियों की संख्या हमेशा स्टाफ से ज्यादा ही होती थी सो स्कूल पर असरदार नियंत्रण उनका ही होता है।

इतना ही काफी न हो, इसके लिए इसमें कई ऐसे विचार और भी हैं जो आपको झकझोर सकते हैं, जैसे,

> *सडबरी वैली में किसी भी बच्चे को पढ़ना सीखने के लिए कभी बाध्य नहीं किया गया, धकेला, उकसाया या फुसलाया नहीं गया और न ही कभी घूस ही दी गई। (पृ.39)* (हम तो सोचते थे कि उकसाए, फुसलाए या मजबूर किए बगैर ये बच्चे तो अनपढ़ ही रह जाएंगे।)
>
> *सडबरी वैली में समय कोई वस्तु नहीं है। उसका अच्छा या बुरा उपयोग नहीं होता। उसे 'बरबाद' नहीं किया जाता या 'बचाया' नहीं जाता।* (हम तो आधा वक्त इसे बरबाद करने में और बाकी आधा वक्त इसे बरबाद न होने देने की चिंता में जुटे रहते हैं : समीक्षक) *यहां जटिलताओं से भरे जीवन की आंतरिक लय को ही समय नापता है। जैसे-जैसे घटनाओं की कोई एक लड़ी खुलती है, उस लड़ी के लिए उपयुक्त समय उसके साथ बीत जाता है। (पृ. 88)*
>
> *ज्यादातर मौकों पर वे (बच्चे) सर्वाधिक कठिनाइयों भरा पथ चुनते हैं। (पृ. 93)* (हम तो यह सुनते आए हैं कि मुश्किल रास्तों पर उनका दम फूल सकता है लिहाजा उन्हें आसान रास्तों पर ही चलाना मुनासिब है)

अब ऐसे स्कूल को देखना हो तो आप वहां जाकर भी देख सकते हैं और उसकी कुछ झलकें नेट पर भी देख सकते हैं और कई झलकें और उन झलकों की बुनियाद में छुपे विचारों की झलक इस किताब को पढ़ते हुए देख सकते हैं और ये झलकें आपको मोहने के साथ-साथ सवाल भी उठा सकती हैं कि जिन बच्चों ने बीस सप्ताह में अंकगणित सीख लिया था क्या वे सिर्फ प्रक्रियागत तरीके से ही सीखे थे या उन्होंने अवधारणागत समझ भी विकसित की थी? जब बच्चे चाहते हैं तभी बड़े मदद करते हैं तो बाकी वक्त ये बड़े करते क्या रहते हैं? कामयाब बच्चों की झलकें तो किताब में झलक जाती हैं लेकिन स्कूल छोड़ गए या नाकाम हो गए बच्चों की झलकें और उनकी आवाजें कहां मिल सकती हैं? आदि।

हर सपना और उसे जमीन पर उतारने की जद्दोजहद को देखना व उससे उठने वाले सवालों पर सोचना नए सपने की बुनियाद रख सकता है। तो सवाल यह भी पूछा जा सकता है कि क्या यह किताब हमारे देश में भी इस तरह से किसी सपने को जमीन पर उतारने की बुनियाद रख पाएगी? किसी सपने से दूसरे सपने की जड़ें रोपने की उम्मीद करना ज्यादती तो नहीं ही होनी चाहिए। ◆